प्लेटफॉर्म का एक दृश्य

Platform Ka Ek Drishya

हमारा जीवन वास्तव में बड़ा विचित्र है। अपने प्रतिदिन के जीवन में हमें अनेक विचित्र लगने वाले दृश्यों से दो-चार होना पड़ता है। जिंदगी एक निरंतर सफर है। यह सफर सुहाना है या नहीं, इसके बारे में प्रत्येक व्यक्ति का अपना अलग-अलग अनुभव हुआ करता है। खैर, इस कथन के भावात्मक अर्थ की ओर न जा, जब हम भौतिक और व्यावहारिक अर्थ पर विचार करते हैं, तो पाते हैं कि आज की रेलों, बसों पर सफर करना तो आम आदमी के लिए निश्चय ही सुहाना न होकर वस्तुत: बड़े ही साहस और जोखिम का काम हुआ करता है। रेलों के आम यात्री-डिब्बों के भीतर आदमी की क्या हालत होती है, अभी इसकी बात तो जाने दीजिए। उन तक पहुंचने के लिए प्लेटफॉर्म-रूपी महासागर को पार करना पड़ता है। इस महासागर के एकदम पथराए पानी में जो मनुष्य पशु रूपी मिलते-जुलते जलचर तैर रहे होते हैं, उनको देखना, उनकी मन:स्थिति का अनुभव उन्हीं की-सी स्थिति में पडक़र करना भी कम रोमांचक नहीं हुआ करता। आइए, आज उसी प्रकार के एक अनुभव को स्वंय जीकर प्लेटफॉर्म के एक भयावह दृश्य के रोमांच का जोखिमभरा आनंद उड़ाया जाए। आप सबने भी कभी-न-कभी तो अवश्य ऐसा अनुभव किया ही होगा।

हुआ यों कि घर से अचानक तार पाकर मैंने अगली सुबह ही रेल-यात्रा का कार्यक्रम बना डाला। गाड़ी तो सुबह आठ बजे चलती थी, परंतु क्योंकि मैं अपने लिए स्थान सुरक्षित नहीं कर सकता था (इस नहीं के कारण से सभी भली प्रकार परितच हैं।) इस कारण यह सोचकर कि पहले जाने से शायद गाड़ी में बैठने की जगह मिल जाए, मैं सुबह सात बजे ही स्टेशन पर जा पहुंचा। वहां पहुंचकर पता चला कि मेरी तरह ही सोचकर सैंकड़ों लोग मुझसे भी पहले वहां पहुंच चुके हैं। तभी तो टिकट-खिडक़ी पर अथाह भीड़ की मारामारी मची थी। अपने जैसे अन्य कइयों के समान मैंने भी पंक्ति में आगे खड़े एक व्यक्ति को पटा लिया कि वह अपने साथ मेरे लिए भी एक टिकट खरीद लेगा। ऐसा करते समय पीछे पंक्तिबद्ध और प्रतीक्षारत खड़े लोग चीखते-चिल्लाते और हमें सभ्यता, अपनी-अपनी बारी का ध्यान रखने आदि की शिक्षा के साथ-साथ मोटी-मोटी गालियां भी देते रहे, परंतु उनकी परवाह न कर, ढीठ बन टिकिट लेकर हम लोग भागे प्लेटफॉर्म की ओर, पर राम-राम! वहां तो उससे

भी कहीं दुगुनी-चौगुनी भीड़ जमा थी। मुझे अपनी सारी भाग-दौड़ व्यर्थ लगने लगी। अभी तक की ढिठाई और प्रयत्न पर पानी फिरता नजर आने लगा। फिर भी मैं तत्पर एंव हाथ-पैर मारता रहा।

उफ! कितना विचित्र दृश्य था प्लेटफॉर्म का! इधर-उधर सभी जगह बैठे-खड़े और लंबे फैले बहुत लोग, हाथ में पकड़ी अटैची रखने तक की भी तो कहीं जगह नहीं थी। वहां बने बेंचों पर एक-एक करके नजर दौड़ाई कि कहीं पांव टिकाने की जगह मिल सके। परंतु उन पर तो ऐसे लोग पसरे खर्राटे भर रहे थे कि जिनका यात्रा से कोई संबंध ही नहीं था। पता नहीं, इतनी भीड़ और शोर में उन्हें नींद कैसे आ रही थी? कुछ पर एक-दूसरे से ठसे सटे लोग विराजमान थे। कुछ पर स्त्रियों ने अपने बच्चे सुला रखे थे। देहाती लोग दरी, खेस, चादर आदि बिछाकर अधलेटे से हो रहे थे। पता नहीं, उन्हें किस ट्रेरेन से जाना था। कहीं कुली मुसाफिरों को गाड़ी में बैठा क्या, ठुंस देने के लिए भाव-ताव कर रहे थे। कुछ कुली एंव दादा किस्म के लोग पांच-पांच, दस-दस रुपए लेकर सीट दिलवाने की बातें भी चुपके-चुपके यात्रियों के कानों में उड़ेल रहे थे। उनकी अगल-बगल खड़े रेलवे पुलिस के कर्मचारी खिसियानी सी हंसी हंसकर उन दादाओं की बातों का समर्थन कर रहे थे। इस प्रकार बड़ी ही दयनीय स्थिति हो रही थी मेरे समेत सभी यात्रियों की। इस सबके बीच खाद्य पदार्थ एंव अन्य सामाग्रियां बेचने वाले वैंडरों की कर्णकुट आवाजें लोगों को वहां का कोलाहल सारे वातवरण में किसी स्टंट फिल्म की तरह पाश्र्व संगीत भरने का प्रयत्न करता हुआ प्रतीत हो रहा था। शोर इतना, कि कई बार अपनी ही आवाज अपने ही कानों तक पहुंचने से इनकार कर देती थी। यह सब देख-सुन, तन-मन पसीना-पसीना होकर बहने लगे थे।

जिस किसी तरह हाथ-पैर हिलाकर मैं कुछ और आगे बढ़ा। प्लेटफॉर्म के एक भाग पर आवारा गाय-बैलों ने अपना अधिकार जमा रखा था। उनका गोबर-मूत्र फैलकर चारों ओर के वातावरण को दूषित कर रहा था। उस स्थान के आसपास ही कुछ बंजारे या भिखमंगे साधु किस्म के लोग ईंटों की अंगीठियां सुलगा कुछ पका-खा रहे थे। वहां से उठता हुआ धुंआं प्लेटफॉर्म पर दूर-दूर तक फैल जाने का प्रयास कर रहा था। एक जगह तो कुछ लोग जाने किस बात पर परस्तपर झगड़ते गाली-गलौज कर रहे थे। मैं बैठने की जगह तलाशने के चक्कर में निरंतर आगे-पीछे आता-जाता रहा। तभी अचानक शोर सुनाई पड़ा। देखा, कोई उठाईगीर किसी की अटेची उठाकर भागता हुआ सामने शंटिंग कर रही खाली ट्रेन के डिब्बे में एक ओर से दूसरी ओर से कूद बड़ी तेजी से भाग रहा था। बीच में ट्रेन आ जाने के

कारण बेचारे सामान के मालिक नाहक गला फाड़ चिल्ला रहे थे। प्लेटफॉर्म पर घूम रहे पुलिस के सिपाही वहीं खड़े-खड़े डंडा हिला चोर को पकडऩे का अभिनय कर रहे थे। मैं भी विवश-सा खड़ा देखता-सुनता रहा।

फिर एक ओर बढ़ा जहंा दो बच्चे अंगुलियों में पत्थर बजाकर गाते हुए भीख मांग रहे थे। इस प्रकार के दृश्य देखता हुआ अनमना-सा मैं एक खंभे के पास तनिक-सी जगह पर, उसी का सहारा ले जाने क्या सोचता हुआ खड़ा हो गया। तब तक उसी प्रकार बेजान-सा, विवश-सा खड़ा रहा, जब तक कि वह ट्रेन आकर चली नहीं गई, जिससे मुझे जाना था। अब यदि कही जाना हो, तो तब तक रेलवे स्टेशन की ओर मुंह तक करने की हिम्मत नहीं हो पाती, जब तक की स्थान आरक्षित नहीं करवा लिया गया हो। पर अब तो महीनों अग्रिम आरक्षण करवाकर भी यात्रा करने वालों को रोते-चीखते हुए देखा जा सकता है। कंडक्टरों की कृपा से उनके स्थानों पर अन्य लोग जो डट रहे होते हैं। मुझे आशा है, आप सबने भी अवश्य ही इस प्रकार का अनुभव कभी-न-कभी किया होगा।